भारत-दुर्दशा में व्यक्त राष्ट्रीय भावना

शोध आलेख

आदित्य मिश्रा

mishraaditya336@gmail.com

भारतेंदु हरिश्चंद्र का समय नूतन और पुरातन के संक्रमण का काल था। जहां पहले ही मुगल राज्य नष्टप्राय हो चुका था वहीं अंग्रेजी शासन की भी नींव हिलाने का पुरजोर प्रयास जारी था। 1857 का स्वतंत्रता संग्राम कम्पनी राज्य को उखाड़ने की ही दिशा में एक कदम था। यह संग्राम भले ही विफल रहा हो परंतु इसने स्वतंत्रता की एक किरण भारतवासियों के मन में जरूर चमका दी थी। हिंदी साहित्य में इसके अगुआ भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र थे। उनकी वाणी में नवीन राष्ट्रीयता का संदेश था। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से स्वतंत्र भारत की नींव तैयार की। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने साहित्य का संबंध साधारण जनता से जोड़ा। वास्तव में हिंदी नाटकों की परंपरा निर्विवाद रूप से भारतेंदु से शुरू होती है भारतेंदु के सभी नाटक उनकी राष्ट्रीय भावना एवं जनता में चेतना जाग्रत करने का परिचय देते हैं, परंतु भारत-दुर्दशा में यह वैशिष्ट्य कुछ अधिक विस्तार के साथ प्रकट हुआ है। ''अंग्रेज साम्राज्यवादियों ने भारतीय जनता को गुलामी की शिक्षा दी, भरसक उसके राष्ट्रीय सम्मान और उसकी प्रतिरोध भावना को कुचलने की कोशिश की। इसके बावजूद जनता के समर्थ लेखक देश की संस्कृति की रक्षा और विकास के लिए आगे बढ़े। ऐसे लेखकों में ही भारतेंदु हरिश्चंद्र थे।'' भारतीय राजनीति में यह समय महारानी विक्टोरिया के भारत साम्राज्ञी घोषित होने का समय है। भारतीय समाज में अंग्रेजी राज के प्रति सद्भावना और विश्वास उत्पन्न हो रहा था। कुछ उदार अंग्रेजी शासकों के भी मन में भारतीयों के प्रति समता के भाव जग रहे थे। अशिक्षा और अज्ञान रूपी अपनी निजी बाधाओं के चलते भारतीय समाज की प्रगति कुण्ठित हो रही थी। इन्हीं परिस्थितियों के बीच भारतेंदु ने 'भारत-दुर्दशा' द्वारा एक राजनैतिक चेतना का स्फुरण किया। यह चेतना भले ही बाहर से शिथिल और रुग्ण दिखे, पर भीतर से यह उग्र एवं गतिशील है। उन्होंने इस नाटक में व्यंग्य, विषाद, विक्षोभ के साथ उत्साह का पुट देकर पराधीन पतित देश के उत्थान का प्रयत्न किया है। भारतेंदु का प्रधान लक्ष्य भारतीय समाज था। उनकी इच्छा थी कि नवीन ज्ञान-विज्ञान के प्रकाश में देशवासी रुढ़ियों और अंधविश्वासों का त्याग करें। अंग्रेजी सरकार से उन्हें यह उम्मीद थी कि वह भारतवासियों की शिक्षा की तरफ अधिक ध्यान दें, जिससे वे आर्थिक रूप से सम्पन्न बन सकें। 'भारत-दुर्दशा' में एक ओर वह देश की मूढ़ता का रोना रोते हैं-

''अंग्रेजहु को राज पाई कै रहे मूढ़ के मूढ़।''

दूसरी ओर अंग्रेजी सरकार की निरंकुशता पर भी रोष प्रकट करते हैं-

''डिसलायटी- हम क्या करें, गवर्नमेंट की पालिसी यही है। कविवचन-सुधा नामक पत्र में गवर्नमेंट के विरुद्ध कौन बात थी? फिर क्यों पकड़ने को हम भेजे गये? हम लाचार हैं।''

इन पंक्तियों से यह पता चलता है कि सरकार के प्रति उनका गुस्सा दबा हुआ है। भारतेंदु यह जानते हैं कि सरकारी नीतियां हमें देशहित में संगठित नहीं होने देना चाहती परन्तु राजभक्ति के चलते वे खुलकर विद्रोह नहीं करते हैं। भारतेंदु की राष्ट्रीय भावना में विद्रोह का स्वर बिल्कुल न हो, ऐसा भी नहीं है। वह बड़े शिष्ट एवं संयत ढंग से अपना रोष प्रकट करते हैं। उनकी विनम्रता का एक उदाहरण जिसमें शांत व्यंग्य करते भी नजर आते हैं- ''मातः राजराजेश्वरि, विजयिनी। मुझे बचाओ। अपनाये की लाज रखौ''

तीसरे अंक में भारतदुर्दैव के पूछने पर सत्यानाश फौजदार का यह कथन अंग्रेजों द्वारा किये जा रहे आर्थिक शोषण पर व्यंग्य है-

''तोहफे, घूस और चन्दे के ऐसे बम गोले चलाये कि ''बम बोल गई बाबा की चारों दिसा'' धूम निकल पड़ी। मोरा भाई बना-बनाकर मूँड लिया। एक तो खुद ही यह सब पंड़िया के ताऊ, उस पर जुटकी बजी, खुशामद हुई डर दिखाया गया, बराबरी का झगड़ा उठा, बाँय-धाँय, गिनी गई, वर्णमाला कंठ कराई बस हाथी के खाए कैथ हो गए।

मदिरा के दुर्व्यसन के लिए उन्होंने स्पष्ट भाषा में अंग्रेजी सरकार को दोषी ठहराया-

''सरकारहि मंजूर जो मेरो होत उपाय।

तौ सब सौं बढ़ि मद्य पै देती कर बैठाय।''

सरकार के दोषों को इतने धड़ल्ले से कह देना किसी पदलोलुप के बस की बात नहीं। कोई चाटुकार या डरपोक व्यक्ति सरकार को आलोचना नहीं कर सकता। ''भारत-दुर्दशा' अंग्रेजी राज्य की अप्रत्यक्ष रूप से कटु और सच्ची आलोचना है।'' इस तरह का नाटक लिखने के लिए सहृदयता के साथ वीरता की भी आवश्यकता थी जो भारतेंदु में मौजूद थी। कुछ लेखक 'भारत-दुर्दशा' में